Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 09, Issue 04, December 2022
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2022

हिन्दी सिनेमा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

PROMILA DEVI

Ph.D. Research Scholar, Music Department, Maharshi Dayanand University Rohtak Haryana

सार

सिनेमा को मनोरंजन करने वाली सभी कलाओं में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। सिनेमा जितनी रोचक कला है सिनेमा की उत्पत्ति व विकास की कहानी भी उतनी ही रूचिकर है। लगभग साढ़े तीन सौ साल के विकास के ऐतिहासिक क्रम में जादुई लालटेन से आरम्भ होकर जहाँ जैट्रोप, एडिसन बाक्सव सिनेमैटोग्राफ तक की यात्रा तय की वहीं लुईस डूग्येरे एडवियर्ड मुईब्रिज व ल्यूमिएर बन्धुओं ने इस कला को जीवंत रूप देने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में दादा साहब फालके के अथक प्रयासों के फलस्वरूप भारत की पहली फिल्म 'राजा हरिशचन्द्र' के निर्माण ने भारत को इस सुन्दरतम कला से युक्त कर दिया। जहाँ इस मूक चित्रपट से भारतीय सिनेमा, विशेष रूप से हिन्दी सिनेमा का सिलसिला शुरू हुआ वहीं सिनेमा की पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' से भारतीय सिनेमा में संगीत तथा पाश्र्व गायन की शुरूआत हुई। इस प्रकार संगीत जैसी कला का सम्बल प्राप्त कर सिनेमा कलाओं का महासंगम बनकर उभर सका। सिनेमा के इस विकास से सिनेमा के स्वर्णिम भविष्य की आशा की जा सकती है।

महत्वपूर्ण शब्द: सिनेमा, चित्रपट, फिल्म, कला, व्यवसाय, उद्भव, विकास, दादा साहब फालके।

शोध विधि: प्रस्तुत शोध शीर्षक 'हिन्दी सिनेमा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' के लिए शोधार्थी द्वारा वर्णनात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया।

प्रस्तावना

मानव की बदलती हुई प्रवृत्ति एवं रुचि के कारण अनेक कलाओं का जन्म हुआ। उसी प्रकार विज्ञान के आविष्कारों तथा मानव के प्रयासों ने प्राचीन नाट्य कला को हिन्दी सिनेमा के रूप में परिवर्तित कर दिया। यूँ तो सिनेमा में अनेक कलाओं का समावेश है परन्तु फिर भी यह एक स्वतंत्र एवं यान्त्रिक कला है।

सिनेमा, बीसवीं शताब्दी की एक महत्त्वपूर्ण देन है जिसकी ओर प्रत्येक व्यक्ति आकर्षित है। प्रत्येक विचारशील व्यक्ति इसके सम्मोहन और प्रभाव से परिचित है। सिनेमा एक ऐसा सशक्त माध्यम है जो जन साधारण के जीवन का सम्पूर्ण दर्पण है। इसमें सभी कलाओं का समावेश होने के कारण यह एक सम्पूर्ण विधा है।

आज सिनेमा जो हम देखते हैं वह कोई दिन महीना या वर्ष में होने वाला चमत्कार या कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं है। यह छोटे-छोटे शोध-कार्यो का, शताब्दियों की मेहनत और लगन का फल था जिसको बाद में एक ऐसे व्यवसाय के रूप में अपनाया गया, जिसमें मनोरंजन था, शिक्षा थी, जो जनमानस की भावनाओं को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम बनकर सम्मुख आया।

सिनेमा की उत्पत्ति व विकास

अपने चारों तरफ फैले प्रकृतिक सौन्दर्य से अभिभूत होकर मानव ने अपने इस अह्लाद को कला के विविध रूपों में प्रकट किया। यह प्रक्रिया उस समय से चली आ रही है जब मनुष्य स्वयं आदिम अवस्था में था कला का उसके उपर एक मृदुल

प्रभाव रहा। कालिदास की यह अभिव्यंजना कि कोई अत्यन्त सुखी व्यक्ति भी जब रम्य वस्तु को देखता है अथवा मधुर संगीतमय स्वरों को सुनता है तो और भी अधिक उत्सुक हो जाता है, यह महत् सत्यानुभूति है[1]।

सृजन और अभिव्यक्ति के माध्यमों में सिनेमा को सही मायनों में बीसवीं सदी का माध्यम कहा जा सकता है । आरंभ से ही विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित होने के कारण यह बड़ी तेजी से सारी दुनिया में जनसंचार और मनोरंजन का सबसे सशक्त माध्यम बन गया । सिनेमा 19वीं सदी के अंतिम दशक में इंसान के हाथों में एक खिलौने के रूप में आया था । बीसवीं सदी में पदार्पण करते ही प्रदर्शनकारी कलाकारों, तमाशगरों, समाज सुधारकों और प्रचारकों को भी यह आकर्षित करने लगा। लेकिन सिनेमा में इन सभी तत्वों की मौजूदगी के बावजूद पहले भी और आज भी, मनोरंजन ही इसका सबसे प्रमुख उद्देश्य है। हाथ से चलाये जाने वाले कैमरों, पुते हुए पर्दों के सेट तथा आदिम उपकरणों से शुरू होकर सिनेमा का यह सफर दुनिया के किन-किन मुकामों से गुजरा, उसका विवरण निश्चय ही रोमांचकारी अनुभव होगा।[2]

करीब साढ़े तीन सौ साल पुरानी बात है । पूर्वी-जर्मनी का एक युवा गणितज्ञ गणित के प्रश्न हल कर रहा था । वह कुर्सी पर बैठा था और सामने मेज पर एक लैम्प जल रहा था । सोचते-सोचते उसकी नज़र दीवार पर पड़ी, वहाँ उसने अपनी टोपी की छाया देखी, जिसे देखकर उसे घोड़े पर सवार आदमी का आभास हुआ । वह तेजी से सर हिलाने लगा, उसे लगा, घुड़सवार भी तेजी से दौड़ रहा है । बस यहीं से सिनेमा बनाने की कहानी आरम्भ होती है । उस गणितज्ञ का नाम एथेनासियस किर्चर था । सन् 1665 में उसने एक लालटेन बनाई, जिसे उसने 'जादुई लालटेन' कहा । रेखांकित चित्रों को वह दीवार के सामने रखता और उसकी छाया दीवार पर दिखाता 'फिल्म' का प्रथम प्रदर्शन यही था ।[3]

बच्चन श्रीवास्तव अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि सिनेमा के अविष्कार में प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रयास 'जैट्राप' नामक यंत्र है, जिसका निर्माण 1835 के लगभग हुआ था । यह एक यन्त्र था जिसमें बहुत से चित्र, एक चरखी में चिपका दिये जाते थे। इसमें एक और चरखी भी लगी रहती थी । जब जैट्राप को घुमाया जाता था तो दृष्टा को चित्रों में गति होने का आभास होता था ।[4] इसके अतिरिक्त 1837 के आसपास छायांकन के कैमरे का अविष्कार 'लुइस डूग्येरे' ने फ्रांस में किया । फिर इसी से प्रभावित होकर अमेरिका के वैज्ञानिक 'टामस अलवा एडिसन ने 1870 ई. में एक बाक्सनुमा यन्त्र बनाया जिसमें एक ओर लैंस तथा दूसरी ओर चित्रों को रखकर सूर्य की रोशनी में उन चित्रों को गतिशील रूप में देखना सम्भव हो सका। इस यन्त्र का नाम 'एडिसन बाक्स' रखा गया।[5]

सन् 1882 एडवियर्ड मुईब्रिज ने अपने अविष्कार 'गतिशील वस्तुओं को छायांकित करने और दर्शाने की पद्धति' को पंजीकरण कराया और एक हाल में अपने चित्रों का प्रदर्शन किया । 25 फरवरी 1888 को एडवियर्ड मुईब्रिज ने आरेंज न्यू जर्सी शहर में एक भाषण दिया साथ में अपने प्रयोग की पूरी जानकारी दी और अपने नव निर्मित उपकरण ''जूप्रक्षिस्कोप'' (जिसका निर्माण में गतिशील चित्रों को प्रदर्शित करने के लिए किया गया) का प्रदर्शन किया ।[6] इसके

1 सी. शिवराममूर्ति, भारतीय चित्रकला पृ. 1
2 रयाज़ हसन, सिनेमा का उद्भव और विकास, पृ. 1
3 डा॰ उमा गर्ग, संगीत का सौन्दर्य बोध, पृ॰ 2
4 बच्चन श्रीवास्तव, भारतीय फिल्मों की कहानी, पृ॰ 15
5 उमा गर्ग, संगीत का सौन्दर्य बोध (फिल्म संगीत के सन्दर्भ में), पृ॰ 2
6 रयाज हसन, सिनेमा का उद्भव और विकास, पृ. 9

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 09, Issue 04, December 2022
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2022

पश्चात् 1877 में सेन फ्रांसिस्को के अंग्रेज फोटोग्राफर एडवियर्ड मुईब्रिज ने एक प्रयोग किया। उसने एक पंक्ति में पच्चीस कैमरे लगाए और भागते हुए घोड़े के चित्र उतारे। इन सभी चित्रों को एक साथ रखकर देखा गया तो आभास हुआ कि घोड़ा दौड़ रहा है।[1]

14 अप्रैल 1893 को न्यूयार्क में 6 मिनट का एक सिनेमा प्रदर्शन किया गया। परन्तु इस यन्त्र से एक बार में एक ही व्यक्ति उस फिल्म को देख सकता था। 1893 में न्यूयार्क में ही एक ऐसी फिल्म दिखाई गई थी। जिसमें गतिहीन चित्र इस तरह जमाए थे कि गतिमान होने पर वे एक कहानी बनाते थे। इस दृश्य का नाम 'द ग्रेट राबरी' रखा गया था।[2]

सिनेमा का जन्म जिसका सर्वप्रथम सार्वजनिक प्रदर्शन एक वर्ष के भीतर की ल्यूमिएर बन्धुओं ने दुनिया के सभी महत्त्वपूर्ण देशों में पहुँचा दिया। ल्यूमिएर बन्धुओं ने इस मशीन का नाम 'सिनेमैटोग्राफ़' रखा जो एडिसन की मशीन पर आधारित था। इसी के द्वारा इन्होंने यह प्रथम प्रदर्शन किया।[3] दस वर्षों में सिनेमा ने इतनी उन्नति कर ली कि लोगों ने इसे 'आश्चर्यजनक' अजूबा मानना बन्द कर दिया। कुछ बुद्धिजीवी और प्रतिभावान लोग इसकी व्यावसायिक सम्भावनाओं के विषय में गहन चिन्तन करने लगे। फ्रांस का जो स्थान इस क्षेत्र में बना था वह अमेरिका ने लिया और सन् 1914 में सिनेमा निर्माण के क्षेत्र में अमेरिका का स्थान महत्त्वपूर्ण हो गया।[4] इस प्रकार अनेक संघर्षों से गुजरते हुए सिनेमा दुनिया के कोने-कोने में पहुंचनें के लिए प्रयासरत होने लगा।

भारत में सिनेमा का आगमन

विश्व में सिनेमा के उद्भव के साथ ही भारत, रूस, अन्य यूरोपीय देश और जापान में भी सिनेमा का उद्भव थोड़े-थोड़े अंतराल में हो चुका था। फ्रांस, अमेरिका और रूस में नई-नई खोजों अविष्कारों द्वारा सिनेमा ने अपनी भाषा को समृद्ध किया। इन देशों द्वारा सिनेमा के विकास में दिया हुआ अतुल्य योगदान जग जाहिर है।[5]

7 जुलाई सन् 1896 को काला घोड़ा के निकट स्थित 'वाटसन होटल' में ल्यूमिएर बन्धुओं ने 200 दर्शकों के सामने भारतभूमि पर अपने उपकरणों द्वारा प्रथम बार चलती-फिरती तस्वीरों का प्रदर्शन किया। उन आदमकद चलती-फिरती तस्वीरों में रेल का आगमन, समुद्र में स्नान, फैक्ट्री में छुट्टी, सिनेमैटोग्राफ़ का आगमन आदि विभिन्न प्रसंगों के दृश्य मात्र थे। इसके एक सप्ताह बाद 15 जुलाई से यह प्रदर्शन मुम्बई के 'नोवेल्टी थिएटर' में आरम्भ हो गया। इनमें टिकट की दर दो रुपऐ प्रति व्यक्ति थी।[6]

1904 में घूम-घूम कर सिनेमा प्रदर्शन करने वाले माणिक डी॰ सेठना का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारतीय सिनेमा के जन्मदाता दुंढ़िराज गोविन्द फालके को सिनेमा बनाने की प्रेरणा माणिक डी॰ सेठना का ही एक सिनेमा 'दा लाईफ़ आफ क्राइस्ट' देखकर मिली। सन् 1917 में नवयुग में उन्होंने लिखा - ''मेरी आँखों के सामने तो यीशु का जीवन चरित्र खुल रहा था, पर मेरी भीतरी आँखें, कुछ और ही देख रहीं थीं - मैं श्रीकृष्ण, श्री रामचन्द्र को देख रहा था।

1 वही

2 डा॰ विमल, हिन्दी चित्रपट् एवं संगीत का इतिहास, पृ॰3

3 महेन्द्र मित्तल, भारतीय चित्रपट, पृ॰ 29

4 फ़िरोज़ रंगूनवाला, भारतीय चित्रपट का इतिहास, (1975), पृ॰ 12

5 रयाज़ हसन, सिनेमा उद्भव और विकास, पृ. 59

6 आलेख वाहिद काज़मी, फिल्म संगीत का इतिहास, अंक जनवरी-फरवरी, 1998, पृ॰ 18

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 09, Issue 04, December 2022
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2022

बाहर आकर मैंने फिर टिकट खरीदा और हाल में जाकर बैठ गया। इस बार मेरी कल्पना परदे पर आकार लेने लगी, क्या ऐसा हो सकता है? क्या हम भारतीय पात्रों को परदे पर देख सकेंगे।''[1] यहीं से दादा साहब अपनी कल्पना को आकार देने में जुट गए और हिन्दुस्तान में एक नवीन इतिहास रच डाला।

इस प्रकार भारतीय सिनेमा का इतिहास भी यूरोपीय या अमेरिकाई फिल्म उद्योग की तरह सौ वर्षों से अधिक है पहला शो सिर्फ दृश्यों की श्रृंखला, चलते हुए दृश्यों के अलावा कुछ और नहीं था लेकिन इसने प्रतिभाशाली भारतीयों द्वारा निर्मित फिल्मों की एक लम्बी परंपरा की शुरूआत थी। वर्तमान में, भारत को प्रत्येक वर्ष सबसे ज्यादा फीचर फिल्में बनाने वाले देश का गौरव प्राप्त है।[2] आज फिल्म उद्योग अनेकों लोगों के लिए रोजगार का ऐसा माध्यम बनकर उभरा है जिसकी कल्पना भी शायद ही किसी ने की होगी।

हिन्दी सिनेमा की विकास यात्रा

फाल्के अनुभवी व्यक्ति थे, जल्दी ही उन्हें एहसास हो गाय कि किस प्रकार की फिल्म बनानी चाहिए? इसलिए दादा साहब फाल्के ने तय किया कि पहले कम बजट की फिल्म बनानी चाहिए। उन्हीं दिनों बम्बई में 'राजा हरिश्चंद्र' की कहानी पर आधारित नाटक प्रसिद्ध हो रहा था। यही निश्चित हुआ कि 'राजा हरिश्चंद्र' पर फिल्म बनाई जाए।[3]

सितम्बर 1912 में भारत की पहली हिन्दी फीचर फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र' का निर्माण प्रारम्भ कर दिया। आठ महीने तक बहुत सी कठिनाइयों का सामना करने के पश्चात् सिनेमा पूरा हुआ और 21 अप्रैल 1913 को 'ओलम्पिया थियेटर' में इसका विशेष शो हुआ, जिसमें उद्योगपति, वकील तथा जज आदि उपस्थित थे।[4]

'राजा हरिश्चन्द्र' को ही भारत का प्रथम चित्रपट माना गया है। यह एक मूक सिनेमा था। इसके प्रदर्शन को लेकर इतिहासकारों में काफी मत विभिन्नता है। तथापि प्रमाणिक रूप से यह सिद्ध हो चूका है कि 17 मई 1913 को इस चित्रपट का प्रदर्शन हुआ था लेकिन कई व्यक्तियों ने इसे भारत का प्रथम सिनेमा स्वीकार नहीं किया।

इस प्रकार मराठी भाषी होते हुए भी दादा साहब फालके ने महात्मा गांधी की भांति ही हिन्दी भाषा के राष्ट्रव्यापी स्वरूप को पहचाना और उसी को उन्होंने अपने इस मूक चित्रपट (सिनेमा) को समझाने का माध्यम स्वीकार किया। दूसरे उन्होंने, इस सिनेमा को भरतभूमि की नाट्य परम्परा के अनुरुप स्वरूप प्रदान करके हिन्दी साहित्य की नाट्य परम्परा को हमारे सम्मुख रखा। साथ ही इस सिनेमा के निर्माण की पूरी रील आज भी 'राष्ट्रीय फिल्म संग्रहालय पूना' में उपलब्ध है।[5]

भारतीय हिन्दी सिनेमा को दो भागों में बांटा गया है। प्रथम भाग उन चित्रपटों में से लिया गया है जो मूक थे। इन चित्रपट में ध्वनि की व्यवस्था नहीं थी। हिन्दी सिनेमा में कहानी को अभिनय के द्वारा ही समझा जाता था। दूसरे भाग में सवाक् सिनेमा को लिया गया है जिनमें तकनीकी साधनों से ध्वनि सम्प्रेषित की गई थी और इनमें संवादों को बोल कर प्रस्तुत किया जाता था।

---

1 डा॰ विमल, हिन्दी चित्रपट् एवं संगीत का इतिहास, पृ॰ 5
2 जे.वी. विलानिलम, भारत में जन संचार की संवृद्धि और विकास, पृ. 54
3 रयाज़ हसन, सिनेमा उद्भव और विकास, पृ. 56
4 फ़िरोज़ रंगूनवाला, भारतीय चित्रपट का इतिहास, (1975), पृ॰ 10
5 डा॰ विमल, हिन्दी चित्रपट एवं संगीत का इतिहास, पृ॰ 7

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 09, Issue 04, December 2022
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2022

मूक सिनेमा युग (1913-1934)

भारत में चित्रपट निर्माण का श्रीगणेश प्रमाणिक तथ्यों के आधार पर स्व॰ श्री दुंढ़ीराज गोविन्द फ़ालके (1870-1941) के स्वनिर्मित प्रथम चित्रपट 'राजा हरिश्चन्द्र' से हुआ। 1917 तक दादा साहब फालके अकेले सिनेमा निर्माता थे, जिन्होंने 23 से भी अधिक मूक चित्रपटों का निर्माण किया। इनमें से कुछ हैं 'भस्मासुरमोहिनी', 'सावित्री', 'लंकादहन', 'कृष्ण-जन्म' आदि।[1]

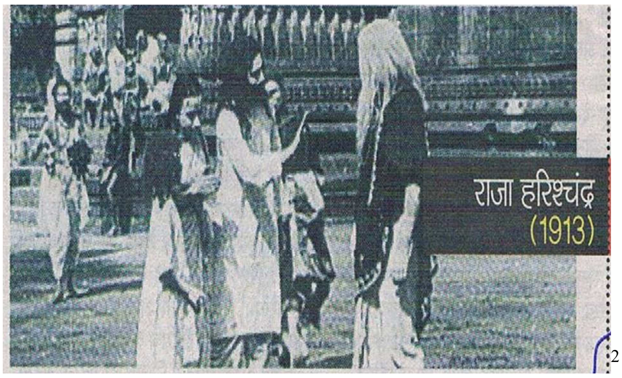

[2]

सवाक् सिनेमा युग (1931 से आज तक)

भारत का प्रथम सवाक् हिन्दी सिनेमा 'आलमआरा' था, जिसके संवाद, गीत आदि हिन्दुस्तानी में बोले गये थे। इसे 1931 में श्री आर्देशिर ईरानी की सिनेमा निर्माण संस्था 'इंपीरियल फिल्म कम्पनी' ने बनाया था। इस सिनेमा का प्रदर्शन 14 मार्च, 1931 को 'मैजेस्टिक सिनेमा' बम्बई में किया गया।[3] 14 मार्च 1931 का दिन इतिहास में स्वर्णक्षरों में अंकित हो गया जैसे-जैसे बोलते सिनेमा का जादू लोगों के सिर चढ़ता, मूक सिनेमा का आकर्षण घटता गया। इसके फलस्वरूप 1931 में जहाँ 107 मूक सिनेमा बनें; 1932 में ये घटकर 88 रह गये। 1933 में 39 मूक सिनेमा बने और 1934 में ये केवल सात रह गये।[4]

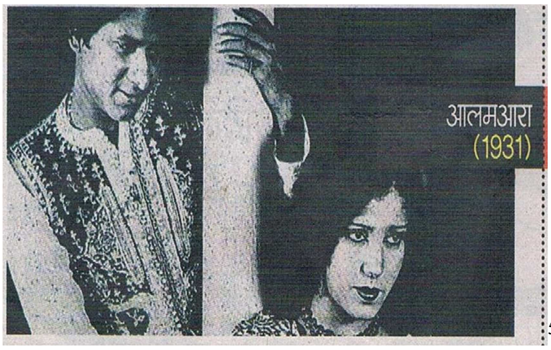

[5]

---

1 डा॰ विमल, हिन्दी चित्रपट एवं संगीत का इतिहास, पृ॰ 10
2 नवरंग, दैनिक भास्कर, शनिवार 5 मई, 2012, पृ॰ 1
3 डा॰ विमल, हिन्दी चित्रपट एवं संगीत का इतिहास, पृ॰ 8
4 वही, पृ॰ 11
5 नवरंग, दैनिक भास्कर, शनिवार 5 मई, 2012, पृ॰ 1

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 09, Issue 04, December 2022
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2022

सिनेमा में संगीत की परम्परा व पार्श्व गायन का प्रयोग

भारतीय फ़िल्म उद्योग में सरस्वती देवी पहली महिला म्यूज़िक डायरेक्टर थीं, जिनको हिमांशु रॉय ने 'जवानी की हवा' (1935) में ब्रेक दिया था।

सिनेमा में संगीत का शुभारम्भ, भारत के प्रथम बोलते सिनेमा 'आलमआरा' से हुआ जिसका प्रदर्शन 14 मार्च 1931 को बम्बई के 'मैजेस्टिक सनेमा' में हुआ इस सिनेमा के लगभग 12 गीतों को संगीतबद्ध किया था फिरोजशाह मिस्त्री ने परन्तु इसके दो गीत काफी लोकप्रिय हुए।[1]

प्रथम गीत 'बदला दिलवाएगा या रब तू सितमगरों से' जिसे गाया था जुबैदा ने और दूसरा गीत 'दे दे खुदा के नाम पर' जिसे गाया था डब्ल्यू॰ एम॰ खान ने । इसके अभिनेता और अभिनेत्री थे मास्टर बिठ्ठल, पृथ्वी राजकपूर, डब्ल्यू॰ एम॰ खान, जुबैदा तथा जगदीश सेठी। 'आलमआरा' के साथ-साथ दूसरे आने वाले चित्रपटों में भी संगीत की परम्परा बढ़ने लगी।[2]

जहाँ तक पाश्र्व गायन का सवाल है तो कहा जाता है कि सर्वप्रथम पी॰हीरालक्ष्मी ने बेगम पारा के लिए, सिनेमा 'भाग्य-चक्र' में जो 1934 में 'न्यू थिएटर्स बना रही थी। प्रेम अदीब और बेगम पारा को लेकर इसका निर्माण व निर्देशन नितिन बोस कर रहे थे। इस सिनेमा में शास्त्रीय गायन था, परन्तु अभिनेत्री बेगम पारा तब शास्त्रीय संगीत नहीं जानती थी। बोस बाबू को लगा कि गीत को पी॰हीरालक्ष्मी की आवाज में अंजाम दे दिया जाए। इस प्रकार बेगम पारा पर्दे पर होठ हिला रही थी और पी॰हीरालक्ष्मी ने पर्दे के पीछे से गीत गाया।[3]

शुरू-शुरू में सवाक् चित्रपटों में काम करने वाले अभिनेता, अभिनेत्रियों का चयन उनकी गायन कला की योग्यता के आधार पर ही होता था इस लिए उस समय अच्छा गा सकने वाले कलाकार ही फिल्मों में अधिक सफल हुए। फिल्मी कलाकार स्वयं ही अपने गीत गाते थे जैसे सहगल, पंकज मलिक, गोविंदराव टेंबे, विनायकराव पटवर्धन, मारूतिराव पहलवान, अशोक कुमार, सुरेन्द्र, श्याम, खुर्शीद नूरजहाँ, काननबाला, उमाशशि, पहाड़ी सान्याल आदि। बाद में पाश्र्व गायकों का जमाना आ गया जिनमें खान मस्ताना, जी.एम. दुर्रानी, उमादेवी (टुनटुन), राजकुमारी जोहरा, शमशाद अमीराबाई, ललिता देउलकर, सरस्वती, राने इत्यादि रहे।[4]

इस प्रकार पाश्र्व गायन की ऐतिहासिक परम्परा की शुरूआत हुई। यद्यपि बेगमपारा अथवा पी. हीरालक्ष्मी अथवा सरस्वती देवी हो, पाश्र्वगायन की शुरूआत उनके लिए अपमानजनक बात थी। नायक अथवा नायिका को यह स्वीकार नहीं था कि उनके लिए उधार के स्वर लिये जाएं और गायक और गायिका को यह कि बुझे दिल से ही, पर उनका काम तो अधिक महत्वपूर्ण है तो इसका श्रेय हमें मिले। काफी रूकावटों के बाद यह कार्य आसान हो पाया क्योंकि आवश्यकता अविष्कार की जननी है। वह सरस्वती देवी जिनके संगीत का जादू आज तक सिर चढ़कर बोल रहा है।[5]

---

1 नवरंग दैनिक भास्कर, शनिवार, 30 जून, 2012, पृ॰ 4

2 डा॰ विमल, हिन्दी चित्रपट एवं संगीत का इतिहास, पृ॰ 86

3 वही, पृ॰ 88

4 वसन्त, संगीत-विशारद, पृष्ठ 632।

5 लावण्य कीर्ति सिंह काव्या, हिन्दी चलचित्र जगत के सफलता संगीत निर्देशकद्वय लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल पृ. 17

Hill Quest: A Multidisciplinary, National Peer-Reviewed Journal
ISSN 2454-3144 | Volume 09, Issue 04, December 2022
http://hillquest.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2022

आज फिल्म उद्योग भारत के शीर्ष उद्योगों में से एक है यह अधिकांश लोगों के लिए सबसे लोकप्रिय है। यहां तक कि रेडियो और टी.वी. भी अपने दर्शकों का मनोरंजन करने के लिए क्रमशः फिल्मी गीतों और दृश्यों का भरपूर उपयोग करते है। अलग-अलग प्रतिभाएं एक साथ मिलकर एक ऐसी फिल्म का निर्माण करती हैं जो कि किफायती कीमत पर बहुत बड़ी संख्या में लोगों का मनोरंजन कर सकें। जैसा कि एक लेखक ने कहा है कि फिल्म व्यवसाय दुनिया का एकमात्र व्यवसाय है जो बगैर किसी संभावना या वापसी की गारंटी के शुरू किया गया। यह एकमात्र ऐसा व्यावसाय है जहां उपभोक्ता देखने से पहले पैसा खर्च करता है।[1] कुल मिलाकर फिल्म जगत आज मनोरंजन का सबसे बड़ा साधन बनने के साथ-साथ आय का भी सबसे बड़ा स्त्रोत बन चुका है।

निष्कर्ष

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज सिनेमा के जिस रूप का हम सब आनन्द ले रहे हैं उसे अनेक वैज्ञानिक तकनीकों का सहारा लेते हुए अनेक महान अनुभावों ने संघर्ष करके हमें सौंपा है। विकास के इस काल खंण्ड में सिनेमा ने आज उस बुलंदी को छू लिया है जहां सिनेमा के बिना जीवन की कल्पना करना भी असंभव प्रतीत होता है। लगभग सौ वर्षो का यह रोचक इतिहास इस बात का संकेत है कि सिनेमा का भविष्य निश्चित ही दिन प्रति दिन विकास के नये आयामों को छू लेगा व जन मानस की रूचियों के अनुसार यूंही विकसित होता रहेगा।

सन्दर्भ

सी. शिवराममूर्ति, भारतीय चित्रकला, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली 2019।
रयाज़ हसन, सिनेमा का उद्भव और विकास, खंडेलवाल पब्लिशर्स एण्ड डिस्टीब्यूटर्स, जयपुर, 2013।
डॉ. उमा गर्ग, संगीत का सौन्दर्य बोध, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2000।
बच्चन श्रीवास्तव, भारतीय फिल्मों की कहानी, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, प्रथम संस्करण, अप्रैल 1992।
डॉ. विमल, हिन्दी चित्रपट् एवं संगीत का इतिहास, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2005।
महेन्द्र मित्तल, भारतीय चित्रपट का इतिहास, अलंकार प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1995।
फ़िरोज़ रंगूनवाला, भारतीय चित्रपट का इतिहास, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1975।
आलेख वाहिद काज़मी, फिल्म संगीत का इतिहास, अंक जनवरी-फरवरी, 1998।
जे.वी. विलानिलम, भारत में जन संचार की संवृद्धि और विकास, नेशनल बुक ट्रस्ट इडिया, नई दिल्ली 2003।
नवरंग, दैनिक भास्कर, शनिवार 5 मई, 2012।
नवरंग दैनिक भास्कर, शनिवार, 30 जून, 2012।
वसन्त, संगीत-विशारद, संगीत कार्यालय हाथरस, जनवरी 2013।
लावण्य कीर्ति सिंह काव्या, हिन्दी चलचित्र जगत के सफलतम संगीत निर्देशकद्वय लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल, कनिष्क पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, प्रथम संस्करण 2008।

---

1 जे.वी. विलानिलम, ग्रोथ एण्ड डिवेलोपमेन्ट आफ मास कम्युनिकेशन इन इंडिया (से हिन्दी अनुवाद), पृ. 60।